विपश्यना

[साधकों का मासिक प्रेरणापत्र]

रजि. नं. १९१५६/७१

पोस्टल रजि. नं. NSK-64

वर्ष ९ • बम्बई • बुद्धवर्ष २५२३ • आषाढ पूर्णिमा [शक] • दि. ९-७-१९७९ • अंक १

आभारी हूँ।

एक दशक पूरा हुआ।

२० जून, १९६९ के दिन परम पूज्य गुरूदेव ऊ बा खिनजी ने विपश्यना के आचार्य पद पर प्रतिष्ठापित कर एक बड़ी जिम्मेदारी का काम मेरे सिर पर दिया। दो दिन बाद ही ब्रम्हदेश से भारत के लिये प्रस्थान था। स्वर्ग सी गरिमामयी जन्मभूमि छोडकर अनेकानेक बुद्धों की, ज्ञानियों की, संतों की और अपने पूर्वजों की इस परम पावन धर्मभूमि को अपने भावी जीवन की कर्म-भूमि बनाने का पुनीत प्रसंग था, सुखद संयोग था।

गुरूदेव की बहुत बडी कल्याणकामना थी कि ब्रम्हदेश भारत का ऋण अदा करे। बीस-पच्चीस शताब्दियों पूर्व जो कल्याणी विपश्यना विद्या ब्रम्हदेश को उपलब्ध हुई थी, उसे विनीतभाव से वापस स्वदेश पहुंचाना—यही ऋण-अदायगी थी।

इस महत्वपूर्ण कार्य को वे स्वयं पूरा किया चाहते थे, पर कई प्रतिबंधो के कारण कर नहीं पा रहे थे। अतः मुझ से करवाया चाहते थे। उपयुक्त समय की प्रतीक्षा थी। संयोग ऐसा हुआ कि बर्मी नागरिक होते हुए भी, भारत आयी हुई बृद्धा जननी की रुग्णावस्था के कारण मेरा भारत आने का प्रसंग बना। बर्मी सरकार ने प्रस्थान की और भारत सरकारने प्रवेश कि अनुमति प्रदान की। (दोनों सरकारों का अत्यंत आभारी हूं।) भारत आने की सुविधा प्राप्त हुई। गुरुदेव अत्यंत प्रसन्न हुए। अपनी चिर संचित धर्मकामना पूरी करने की जिम्मेदारी उन्होंने मुझे सौंपी। अपनी कमियों को जानते हुए भी जिम्मेदारी स्वीकारनी ही थी। मुझे भी तो गुरु ऋण से मुक्त होना था। जिन करुण संतने यह कल्याणकारी विद्या सिखाकर मेरे लिये अविद्यारूपी अंडे का खोल तुड़वाया और अन्तर्चेतना का आत्मबोध करवाकर एक नया जन्म दिया और केवल जन्म ही नहीं, चौदह वर्षों तक असीम वात्सल्य भाव से मुझे इस विद्या में पोषित किया, उनके इस महान ऋण से यत्किंचित् भी उऋण होने के लिए बड़ी से बड़ी जिम्मेदारी उठानी ही थी।

सचमुच जिम्मेदारी बड़ी थी। अर्वाचीन भारत में भगवान गौतम बुद्ध के प्रति अत्यंत श्रद्धा और गौरव का भाव होते हुए अनेक लोगों के मन में उनके प्रशिक्षण के प्रति कितनी गहरी भ्रांतियां हैं! कितना गहरा विरोध है! बीस-बाइस सदियों की भ्रांतियां, बीस-बाइस सदियोंका विरोध। किसी को क्या दोष दूं? मैं स्वयं भी कभी इन्हीं भ्रांतियों का शिकार था। इसी विरोध में शामिल था। गुरुदेव की कृपा से सद्धर्म का व्यवहारिक पक्ष सीखने को मिला तभी सारी भ्रांतिया दूर हुई, सारा विरोध विलीन हुआ। यही व्यवहारिक पक्ष अब अनेक लोगों की भ्रांतियां और विरोध दूर कर सका है और कर रहा है। धर्म का सांप्रदायिकता-विहीन शुद्ध मंगलकारी स्वरूप प्रकाश में आ रहा है।

भगवान बुद्ध ने धर्म का शुद्ध स्वरूप ही प्रकाशित किया। शील, समाधि और प्रज्ञा का सार्वजनीन व्यवहारिक उपदेश ही दिया। कोई भी बोधि प्राप्त महापुरुष यही तो करता। कोरी दर्शनिके मान्यताओं और विवादों के लिए धर्म नही होता। संप्रदाय-स्थापन के लिए भी धर्म नहीं होता। धर्म आत्मकल्याण के लिए ही होता है। सद्धर्म के इस सर्वजन हितकारी स्वरुपने ही मुझे अपनी ओर आकर्षित किया था और यही अनेक समझदार लोगों को अपनी ओर आकर्षित कर सका है, कर रहा है। "अहो बुद्ध! अहो धम्म! अहो धम्मसुधम्मता!" धन्य हैं बुद्ध जो सार्वजनीन धर्म का उपदेश देते हैं। धन्य है धर्म जो सर्वजनीन हितकारी होता है। धन्य है धर्म की सुधर्मता जिसके कारण उसे कोई भी सामान्य व्यक्ति धारण कर लाभान्वित हो सकता है। आभारी हू ऐसे संप्रदाय-निरपेक्ष धर्म का जो मन में रंच मात्र भी सांप्रदायिक संकीर्णता नहीं आने देता। इसी धर्म-बल पर विपश्यना लोक सेवा का माध्यम बन सकी है। यद्यपि प्रारंभिक कठिनाइयां तो थीं ही।

धम्म वाणी

यथापि भद्दो अजञ्ञो, खलित्वा पतितिट्ठति।
एवं दस्सन सम्पन्नं सम्मा सम्बुद्ध सावकं॥

– थेर गाथा ४५.

जिस प्रकार भद्र उत्तम जाति का बैल, गिरने पर भी उठ खड़ा हो जाता है, उसी प्रकार सम्यक् सम्बुद्ध का दर्शन-सम्पन्न श्रावक भी।

एक बडी कठिनाई यह भी थी कि लगभग ६० करोड की जन-संख्या वाले इस देश में कुल मिलाकर १०० व्यक्ति भी मेरे परिचित नहीं थे। और जिन्हे घनिष्ट कह सकूं उनकी संख्या तो अंगुलियों के पोरों पर गिनी जा सके। सबसे घनिष्ट तो अपने ही परिवार के भारत-वासी सदस्य। परन्तु ऐसा संयोग हुआ कि उन्हें एक सर्वथा एक विपरीत साधना प्रणाली में दृढता पूर्वक प्रतिष्ठित पाया। भारत पहुंचते ही परिवार के जिस माहौल का सामना करना पडा, उससे तो यही लगा कि उनकी ओर से किंचित मात्र भी सहयोग की आशा करना व्यर्थ है। परन्तु फिर भी सहयोग मिला ही, जिसे भुला नहीं सकता। उनका आभार मानता हूँ। अपने इस प्रभूत पुण्यकार्य में उन्हें भागीदार मानता हूँ।

पिछले दस वर्षों में यह जो हजारों की संख्या में देश-विदेश के लोग संपर्कमें आये वह वस्तुतः धर्म के बल पर ही आए। कितने अपरिचित अजनबी लोग धर्म के क्षेत्र में चिर-परिचित साबित हुए। इनमें से अनेक तो ऐसे थे जो अपने किसी पूर्व पुण्य के परिणाम स्वरुप धर्म का बीज मात्र लेने आए, जो कि उन्हें समय पकने पर कल्याण-कारी फल देगा ही। मैं उन सब का अत्यंत आभार मानता हूँ। उन्होंने मुझे धर्मदान दे सकने का और गुरु-ऋण से किंचित मात्र भी उऋण हो सकने का सुअवसर प्रदान किया।

परन्तु धर्म संपर्क में ऐसे लोग भी आए जो कि सहज भाव से इस कल्याणकारी आंदोलन के अंग बन गए। कितनी महती सेवा की इन लोगों ने। पिछले दस वर्षों के व्यस्त जीवन का पुनरावलोकन करता हूँ तो ऐसे कितने चेहरे सामने आते हैं जो कि विपश्यना के शिविर लगाने में तन, मन, धन से पूर्णतया संलग्न हो गए। यह उन प्रारंभिक दिनों की बात है जब कि विपश्यना का अभ्यास तो दूर, यह शब्द भी लोगों के लिए अनसुना, अनजाना था। उन दिनों विपश्यना प्रशिक्षण के लिए कोई एक केंद्र भी नहीं बना था। शिविर व्यवस्थापक को किसी धर्मशाला अथवा स्कूल-भवन का इंतजाम करना पड़ता था। दस दिनों तक साधकों के निवास व भोजन का समुचित प्रबंध करना पड़ता था। कोई बीमार हो तो उसकी यथोचित चिकित्सा व पथ्य-परहेज का प्रबंध करना पड़ता था। शिविर के दौरान दस दिनों तक तो वह अपना काम-धंधा छोडकर साधकों की बराती सेवा-चाकरी करता ही, पर उसके पूर्व भी बुकिंग के लिए अनेक दिनों तक पत्राचार में लगा रहता। और फिर शिविर के बाद भी उखड़ते मेले की जिम्मेदारी का भार। जो भी बर्तन-भांडे, शैय्या-बिस्तर एकत्र किए उनका भाडा देना, उन्हे यथास्थान वापस पहुँचाना। स्थान-स्थान से आए हुए साधकों को वापस घर लौटने लिए रेल्वे बुकिंग आदि का प्रबंध करना। यों छोटे-बडे बीसियों काम व्यवस्थापक के सिर पड़ते थे। और यह सब कुछ अत्यंत प्रसन्न चित्त से विशुद्ध सेवाभाव से होता। कहीं कोई लाभ का लोभ नहीं, यश की कामना नहीं। स्वयं धर्मरस चखा है। अतः चाहता है कि अधिक से अधिक लोग धर्मरस चखें। स्वयं धर्मसाधना से लाभान्वित हुआ है। अतः चाहता है कि अधिक से अधिक लोग लाभान्वित हों।

ऐसे अनेक सेवाभावी व्यवस्थापकों के चेहरे याद करता हूं तो मन कृतज्ञता-विभोर हो पुलक-रोमांच से भर-भर उठता है। इतने अल्पकाल में जो भी काम हुआ क्या वह इन निःस्वार्थ सेवियों की धर्मसेवा के बिना संभव हो सकता था ?

इन्हीं सेवाभावियों में से कुछ एक ने पूज्य गुरुदेव सयाजी ऊ बा खिन की पावन स्मृति में इगतपुरी में "विपश्यना विश्व विद्यापीठ" की स्थापना की, हैदराबाद में "अन्तर्राष्ट्रीय विपश्यना साधना केन्द्र" की और जयपुर में "विपश्यना केन्द्र" की। इन साधना केन्द्रों के निर्माण में कितने विपश्यी साधकों ने सहयोग दिया और दे ही रहे हैं; उन्हें इस सहयोग के बदले में कुछ भी पाने की स्वार्थभावना नहीं। विशुद्ध सेवाभाव ही सेवाभाव। जिन्होंने दान भी दिया तो कहीं नाम की आकांक्षा नहीं, किसी विशिष्ट सहूलियत की कामना नही। सेवा भी की तो कोई पद की भूख नहीं, प्रतिष्ठा की प्यास नहीं। आभारी हूं इन सभी सेवार्थियों का।

यह धर्मसेवा केवल भारतीय साधकों तक सीमित नहीं रही। अनेक विदेशी युवक-युवतियों ने धर्मसेवा के लिए अपना जीवनदान दिया है। कई लोग धम्मगिरि पर संन्यासी की तरह सेवा करते हैं। आवश्यक हो तो एक सामान्य मजदूर की तरह पसीना बहाकर श्रमदान देते हैं। इनकी सेवा की लगन देखकर अनेकों के मन पुलकित होते हैं और उन्हें धर्मप्रेरणा मिलती है। भारत में ही नहीं, बाहर विदेशों में भी अनेक लोग सेवारत हैं। अनेक देशों में विपश्यना के संपर्क स्थान स्थापित किए गए हैं। जहां नियमितरूप से साप्ताहिक विपश्यना साधना होती है। समय-समय पर विपश्यना-शिविर का आयोजन किया जाता है। यह अनेकानेक देशी और विदेशी साधक धन्यवाद के पात्र हैं। यद्यपि जानता हूं कि इन्हें धन्यवाद की किंचित भी भूख नहीं है।

पिछले दस वर्षों में कितने ही शिविर बौद्ध विहारों में, जैन उपाश्रयों में, हिंदू मंदिरों में, मुस्लिम मस्जिद में और ईसाई गिरजाघर में लगे। यह उन-उन धर्मस्थानों के नेताओं की महानुभावता के कारण ही हो सका। उनमें जरा भी सांप्रदायिक संकीर्णता होती तो वे अपने-अपने धर्मस्थानों में विपश्यना के शिविर लगने की अनुमति भला कैसे देते ? विशेषकर ऐसी अवस्था में जबकि किसी द्वेषभाव से नहीं, परंतु निर्विघ्न साधना कर सकने की अनिवार्य आवश्यकता के कारण विपश्यना शिविरों के दौरान उनके अपने सभी दैनिक कर्मकांड विधि-विधान, मंत्रादि बंद करा दिए जाते थे। खंडाला के सेंट मेरी गिरजाघर के मुख्य प्रार्थना-प्रकोष्ठ में शिविर लगा और शिविर के दौरान दो रविवार आए। नित्यप्रति के पूजापाठ की बात तो दूर, इन दोनों रविवारों को उनके साप्ताहिक सामूहिक प्रार्थना-प्रवचन तक बंद रहे। निंगाल (कच्छ) की मस्जिद में दो शिविर लगे, जिसमें कि दो या तीन शुक्रवार आए। रोज की अजान बंद रही सो तो रही ही, परन्तु जुम्मे की सामूहिक नमाज भी विपश्यना वालों के खातिर बंद रखी गई। फिरके परस्ती का जरा भी तंग नजरिया नहीं। उदार चेतना ही उदार चेतना। सर्वथा प्रशंसनीय है ऐसी उदार चेतना, जिसकी वजह से मंदिरों में घंटे घड़ियाल नहीं बजे, गिरजाघरों में सामूहिक प्रार्थनाएं नहीं हुईं, मस्जिद में अजान और नमाज नहीं पढी गई ताकि विपश्यना का साधक शांत वातावरण में अन्तर्मुखी होकर अपने भीतर की गाठें खोल सकने की विद्या सीख सके।

ब्रह्मदेश में विपश्यना साधना की यह विशुद्ध विधि गुरु-शिष्य परंपरा द्वारा बहुत कम लोगों के ही पास है। अनेक भिक्षु इस आशुफलदायिनी (अकालिक) और प्रत्यक्षफलदायिनी (सांदृष्टिक) विद्या से वंचित हैं। देश के अनेक प्रसिद्ध-प्रसिद्ध भिक्षु पूज्य गुरुदेव से यह कल्याणकारी विद्या सीखना चाहते थे। परंतु एक गृहस्थ के चरणों में बैठकर धर्म सीखने की हिचक थी। सामाजिक प्रतिष्ठा पर आंच आने का भय था। इसलिए उनकी ओर से पूज्य गुरुदेव पर इस बात का बहुत बड़ा दबाव था कि वे चीवर धारण कर लें ताकि एक भिक्षु के पास धर्म सीखने में किसी को कोई कठिनाई न हो। पर पूज्य गुरुदेव के अपने सिद्धांत थे, अपनी मान्यता थी, जिसकी वजह से उनकी अपनी मजबूरी थी। उन्हें इस जीवन में गृहस्थ के बाने में भिक्षु का सा जीवन जीकर धर्मसेवा करनी थी। इसी में उन्हें अधिक लोगों का कल्याण नजर आता था। अतः अनेक मुमुक्षु भिक्षु उनसे धर्म सीखने से वंचित रह गए; यह बखूबी जानते हुए भी कि इस संत पुरूष के पास ऐसी अध्यात्म विद्या है जिसके अभ्यास से निर्ग्रन्थ बना जा सकता है, स्थितप्रज्ञ बना जा सकता है, जीवनमुक्त बना जा सकता है। और इसीलिए तो भिक्षु जीवन धारण किया है, घर से बेघर हुए है। परंतु फिर भी लाचारी थी।

लेकिन धन्य है यह भारत-भूमि। यहां पिछले दस वर्षों में कितने गृहत्यागियों ने अपने अहंभाव को छोड़कर, प्रतिष्ठा के भय को दूर कर एक गृहस्थ के पास धर्म सीखा। कितने लब्ध प्रतिष्ठ बौद्ध भिक्षु जो भगवान की वाणी के प्रसिद्ध अन्वेषक और उद्-घोषक है, मूर्धन्य जैन मुनि और साध्वियाँ जो अपने-अपने तीर्थ के, गच्छ के पूज्य हैं, प्रतिष्ठित हैं, कितने ईसाई पादरी और साध्वियाँ जो कि ईसाई समाज में वरिष्ठ हैं, वरेण्य हैं, कितने हिंदू सन्यासी जो कि अपने भक्तों में प्रणम्य हैं--एक गृही से साधना सीखने के लिए तैयार हुए। बहुत बड़ी अहमन्यता का प्रश्न था, प्रतिष्ठा का सवाल था। कोई क्या कहेगा? उनके अनेक अनुयायी क्या कहेंगे! किसी गृहस्थ के पास कोई लौकीय अपरा विद्या सीखे--जैसे कोई भाषा सीखे, व्याकरण सीखे, गणित सीखे, भूगोल सीखे, विज्ञान सीखे तहां तक तो ठीक परंतु आध्यात्मिक पराविद्या सीखने के लिए अपने अहंभाव को शून्य कर लेना होता है। और ऐसा ही किया इन धर्म मुमुक्षुओं ने। इन गृहत्यागियों ने किस लगन और निष्ठा के साथ धर्म सीखा! कितने कष्ट सहे! अपने सांप्रदायिक कर्मकांडो को गौण मानकर शुद्ध धर्म साधना की निरंतरता के अभ्यास को महत्व देते हुए शिविरों में शामिल हुए। अनेक जैन मुनि और साध्वियाँ तो सैकड़ों मीलों की पैदल यात्रा करके शिविरों में शामिल होने आए। धन्य है उसकी धर्म जिज्ञासा! धन्य है उसका मुमुक्षुभाव! धन्य है उनकी त्याग तपस्या! अनेक जन्मों के संचित पुण्य-पारमिताओं के धनी हैं वे। तो ही धर्मसाधना की ओर उन्मुख हुए। उनमें से एक-एक को याद करता हूँ तो श्रद्धा भरे पूज्य भाव से मन-मानस उर्मिल-उर्मिल हो उठता हैं।

पिछले एक दशक में विपश्यना प्रशिक्षण के क्षेत्र में जो कुछ भी हुआ, उसका किंचित मात्र भी अवमूल्यन नहीं करता अन्यथा इतने लोगों की सेवा का अवमूल्यन होगा। परंतु फिर भी इतना तो समझता ही हूँ कि यह तो मात्र पहला कदम था। यात्रा लंबी है। पुण्यभूमि भारत को आधार बनाकर सारे विश्व में विपश्यना का आलोक प्रसारित करना है। जीवन भर का काम है। खड़ी चढ़ाई है, विघ्न है, बांधाएं हैं। अपने ही भीतर की बाधाएं, बाहर की बाधाएं, पारिवारिक बांधाएं सामाजिक बांधाएं, अनेकानेक धर्मविरोधी शक्तियों की बाधाएं। इन बाधाओं को पार करने के लिए धर्म का बल भी अपेक्षित है। धैर्य, सहिष्णुता, लगन और निरहंकारता का धर्म बल। कभी-कभी कठिनाइयां सामने आती हैं तो अपनी ही दुर्बलता के कारण कुछ देर के लिए घुटने टिक जाते है। लेकिन शीघ्र ही घुटने झाड़कर उठ खड़ा होता हूँ और दुगने धर्मबल से फिर आगे बढ चलने का क्रम शुरु कर देता हूँ। अब तक जो यात्रा पूरी की है उसी से आगे बढने का बल मिलता है। अब तक की यात्रा पूरी करने का बल कृतज्ञता का ही धर्मबल है, यही संबल है आगे की यात्रा के लिए।

इसलिए मन बार-बार कृतज्ञता के भावों से भरता रहता है। आभार मानता हूं उन भगवान अर्हत् सम्यक संबुद्ध का, जिन्होंने यह विलुप्त विद्या पुनः खोज निकाली और इससे आत्महित ही नहीं साधा बल्कि सर्वहित के लिए मुक्तहस्त से इसका वितरण किया। आभारी हूं भगवान बुद्ध से लेकर परम पूज्य गुरुदेव ऊ बा खिन तक की गुरु-शिष्य परंपरा का, जिसने कि यह कल्याणकारी विद्या अपने शुद्ध रूप में कायम रखी और परिणामतः हमें प्राप्त हुई। आभारी हूं मा सयामा का, जिसने धर्मपथ पर अपरिमित मंगल मैत्री का संबल दिया, आभारी हूं अपने परिवार के सभी लोगों का जिनका सहयोग जनहितकारी साबित हुआ। आभारी हूँ धर्म के सभी साथी, संगी, सहयोगी, सहकारी और संरक्षकों का, जिनका साथ सचमुच पथ का पाथेय बना हुआ है। पिछले दस वर्षों में जाने-अनजाने, चाहे अनचाहे मन, वचन या शरीर से जिस किसी के प्रति कोई अपराध हुआ हो, उससे घरबद्ध क्षमायाचना करता हुआ सबका आभारी हूँ! आभारी हूँ!! अत्यंत आभारी हूँ!!!

धर्मपथिक,

स. ना. गो.

इगतपुरी में स्वयं-शिविर

क्रमांक	४२	,,	११-७-७९	से	२१-७-७९ तक
,,	४३	,,	२१-७-७९	से	३१-७-७९ ,,
,,	४४	,,	१-८-७९	से	११-८-७९ ,,
,,	४५	,,	११-८-७९	से	२१-८-७९ ,,
,,	४६	,,	२१-८-७९	से	३१-८-७९ ,,
,,	४७	,,	१-९-७९	से	११-९-७९ ,,
,,	४८	,,	११-९-७९	से	२१-९-७९ ,,

संपर्क : व्यवस्थापक, विपश्यना विश्व विद्यापीठ, धम्मगिरि, इगतपुरी-४२२४०३. (नासिक-महाराष्ट्र) फोन नं. ७६.

सूचना : १) स्वयं-शिविर में केवल वे **पुराने साधक** ही सम्मिलित हो सकेंगे जो कि विद्यापीठ की अनुशासन-संहिता का आत्मविश्वास के साथ कड़ाई से पालन कर सकें।

२) कोई साधक यदि पूरे शिविर में सम्मिलित न हो सके तो वह अपनी सुविधानुसार बीच में कम दिनों के लिए भी सम्मिलित हो सकता है।

३) प्रत्येक अवस्था में आवश्यक है कि व्यवस्थापक से अपना स्थान सुरक्षित रखने की पूर्व स्वीकृति प्राप्त कर लें।

४) स्वयं शिविर में अन्य सभी सुविधायें उपलब्ध रहेंगी।

आगामी शिविर

क्रमांक १६३	PLAIGE	फ्रांस	,,	१४–७–७९ से २४–७–७९ तक

सम्पर्क : Mme. Calude Peltier, Federation Francaise, de Yoga, 3 Rue Aubriot, Paris-75004, France Tel : (01) 278-0305.

,, १६४	MONTRIAL,	कनाडा	,,	२६–७–७९ से ५–८–७९ तक

सम्पर्क : Geo Poland, R. R. 1, Abercorn Joeibo, Quebec, Tel : (514) 538-6132.

,, १६५	OXFORD,	इंगलैंड	,,	९–८–७९ से २०–८–७९ तक
,, १६६	,,	,,	,,	२१–८–७९ से १–९–७९ तक
,, १६७	,,	,,	,,	४–९–७९ से १५–९–७९ तक

सम्पर्क : Susan & Graham Owens 14 Send Road Caversham, Reading, Berks, England.

विशेष : १) पूज्य गुरुजी के उपरोक्त कार्यक्रम विदेशों में निश्चित हैं। विगत २९ जून को वे भारत से प्रस्थान कर चुके हैं। यह सूचना इसलिए प्रसारित है कि उस ओर विदेशों में जिन भारतीय साधकों के कोई मित्र परिचित हों और इन शिविरों में से जो अनुकूल पड़ता हो उस में वे सम्मिलित हुआ चाहें तो उन्हें समय रहते सूचना मिल जाय।

२) विदेशों में पुराने साधकों के बहुत बड़े आग्रह के बावजूद पू. गुरुजी उन्हें थोडा समय दे पा रहे हैं। इंगलैंड के अंतिम शिविर के पश्चात् उन्हें तुरंत भारत लौटना अनिवार्य है। अतः स्थानीय साधकों की ही मांग पूरी होनी मुश्किल है। फिर भी जो भारतीय शिविरार्थी किसी शिविर में सम्मिलित होना चाहें, उन्हें चाहिए कि तुरंत अपनी बुकिंग करा लें अन्यथा स्थान मिलना कठिन होगा।

ग्राम : फूडफर्ट फोन नं. : ३१३५१०

फूड्स फैट्स एण्ड फर्टिलाइजर्स लि.,

ग्रीन हाऊस, २ रा माळा, ग्रीन स्ट्रीट, फोर्ट, बम्बई–४०० ०२३.

की मंगल कामनाओं सहित।

दूहा धरम रा

करुणासागर बुद्धजी, थारो ही उपकार।
धरम दियो मंगलकरण, सुखी करण संसार॥
दुखड़ा काटै पाप का, किसो क धरम महान।
जन जन को मंगल करै, जन जन को कल्याण॥
धरम रतन रक्खित रख्यो, धन धन संत समाज।
सेवा ही करता रया, पर मेटन दुख काज॥
जनम जनम को पुन जग्यो, सतगुरु मिल्यो सुजान।
मायळ मिलगी धरम की, मिली सुखां की खान॥
धरम पंथ की जातरा, मिल्या लोग अनजाण।
कितनै कितनै जनम की, जागी धरम पिछाण॥
संगी साथी पंथ पर, कितो दियो सहकार।
चित छायी किरतग्यता, चित छायो आभार॥

दोहे धरम के

जीवन पथ पर धरम का, कैसा सुखद प्रसंग।
बहुजन का हितसुख सधे, कितने साधक संग॥
धरम पथिक को धरम का, पंथ मुबारक होय।
विघ्न कटे, बाधा हटे, सब विधि मंगल होय॥
संकट आया देखकर, ना मन विचलित होय।
साहस धीरज लगन रख, अंत भला ही होय॥
अपने मन की निबलता, [illegible] घुटने दें टेक।
फिर उठ चल, मन सबल कर, [illegible] टिके न [illegible]॥
साथी मुखड़े मोड़ लें, बैरी बने जहान।
तो भी मन दूषित न हो, रहे धरम का ध्यान॥
जो जो साधक धरम के, सबका मंगल होय।
जो भोले बाधक बनें, उन का भी हित होय॥

सयाजी ऊ बा खिन मेमोरियल ट्रस्ट के लिए मुद्रक, प्रकाशक एवं संपादक : रामप्रताप यादव, ग्रीन हाऊस, २ री मंजिल, ग्रीन स्ट्रीट, फोर्ट, बम्बई २३. टेलीफोन : ३१३५१०. ● मुद्रण स्थान : अक्षरचित्र मुद्रणालय, सातपुर, नासिक ४२२ ००७. टेलिफोन ८२५१ ●
पत्रिका में विज्ञापन दर : आधा पृष्ठ रू. ४००/–, चौथाई पृष्ठ रू. २०० /– ● वार्षिक शुल्क रू. ५/–, आजीवन शुल्क रू. ५१/–

"विपश्यना"

License No. NS 18
Licensed to post without pre-payment

पो. रजि. नं. NSK-64

प्रेषक :
सयाजी ऊ बा खिन मेमोरियल ट्रस्ट
विपश्यना विश्व विद्यापीठ
धम्मगिरि, इगतपुरी–४२२ ४०३.
(नासिक, महाराष्ट्र)